कहानी

इतिहास

संजीव

इतिहास के उस धुँधले पृष्ठ पर क्या लिखा हुआ था, कोई ठीक-ठीक नहीं जानता लेकिन हर बताने वाला दावा करता है कि उसी का सच अन्तिम सच है। पूरी बात जानने के लिए पूरी कहानी उधेड़नी पड़ेगी, इतनी गोंजगांज में दबे-कुचले, पिचके, घिसे और लुप्त हो गए एक-एक अक्षर को तहिया-तहिया कर रखना होगा, एक-एक अक्षर को जोड़-जोड़ कर पढ़ना पड़ेगा, मतलब बूझना पड़ेगा, तब जाकर कुछ समझ में आए तो आए। खतरे यहाँ भी कम नहीं हैं, मंढार के रूए-सा एक नन्हे बीज के चारों ओर ढेर सारा भरम फैला होगा। सच! सच को पूरी तरह कहाँ जान पाया है कोई!

न न, हड़प्पा और मोहंजो-दारो नहीं भाई, यह तो बिनौला है। पाँच हज़ार नहीं, यही कोई साठ-पैंसठ साल पहले की घटना।

तब अँग्रेज़ों का राज था। इस जवार में कुछ ही वर्षों पहले रेलगाड़ी चली थी। भाप का इंजन भक-भक धुआँ फेंकता। 'छुक-छुक पीं-ई-ई, पीं-ई-ई' चलती रेल। अब बिनौला कोई पटना-हाबड़ा तो था नहीं कि छुकछुकाती रेल वहाँ लदनी कटाने के लिए आकर खड़ी हो जाती और बिनौला वाले शान से एक हाथ से धोती उठाए और दूसरे हाथ से मूँछ पर ताव देते उस पर सवार होते। उतरने वाले पूछने वालों पर रोब गालिब करते, "जो है

सो, लोहे की पालकी पर सवार होकर आए हैं। का समझे?"

यह छुक-छुक करती रेलगाड़ी बिनौला वालों की छाती पर मूंग दलती धड़धड़ाती हुई निकल जाए तो यह बिनौला वालों के लिए चुल्लू भर पानी में डूब मरने की ही बात हुई न! दोनों तरफ खलिहर खेतों में दूर-दूर फैला गंगाजी का पानी। अगल-बगल के खेतों की माटी काट-काट कर ऊँचा किया गया रेलमार्ग। उन्हीं की ज़मीन, उन्हीं के खेत, उन्हीं के सीने पर साड़ी उठाए रेल ऐसे भागती जैसे बिनौला से छुआ जाएगी। पकड़ना है तो एक कोस पीछे और दो कोस आगे जाओ जहाँ 'टेसन' बना है।

और किसी बात पर एका हो न हो, इस बात पर ज़बर्दस्त एका था कि बिनौला को भी 'टेसन' बनाना पड़ेगा। सिर्फ बिनौला वालों को ही नहीं, 'हाथी पेटा', 'जानकी दह', 'इस्माइलपुर', 'सैमुअलगंज' समेत पच्चीस गाँव, जो रेल लाइन के दोनों ओर पड़ते थे, की यही राय थी। बहुत दौड़-धूप की, बैठकें हुईं, चन्दे हुए, किस-किस के तलवे नहीं सहलाए, कितना तो कागद खर्च हो गया 'दरखास' देने में लेकिन अंजाम... वही ढाक के तीन पात।

विनय न मानत जलधि जड़
गए तीन दिन बीत!

तीन दिन नहीं, तीन साल!

जब तीन साल बीत गए तो एक दिन किरिया दे-दे कर लोगों को इकट्ठा किया गया। बटोर में तय हुआ कि टरेन (अब तक वे रेल का दूसरा नाम जान गए थे) को तो सरकार को रोकना ही पड़ेगा बिनौला में, ऐसे नहीं रुकी तो हम वैसे रोकेंगे। वैसे माने जबरन।

"कौन-कौन रोकेगा?" शंका उठी।

"सभी।" समाधान आया।

"कब?"

"आज से तीन महीने बाद जब सुरुज भगवान उत्तरायण होते हैं तब, कोई शुभ मुहूर्त देखकर। पहले चेता दिया जाए कि तीन महीने के अन्दर टरेन न रुकी तो तीन महीने के बाद 'गान्ही बाबा' की तरह हम लोग 'सतयागरह' करेंगे।"

एक-एक कर और नब्बे दिन बीत गए।

अब...?

पच्चीसों गाँवों में मुनादी फिरी, "सुनो, सुनो, सुनो। सब लोग सुनो। सब की इज्जत का सवाल है। जनी-मरद सबसे अनुरोध है कि बिनौला के बुढ़वा पीपर के नीचे बटोर में सब शामिल हों। टरेन के रोकने पर विचार किया जाएगा। सुनो, सुनो, सुनो...।"

"कटने?" एक शंका।

"अदुर मरलहा! पहले ही कटने का नाम लेता है। गान्ही बाबा का 'सतियागरह' कटने के लिए होता है क्या?" शंका समाधान!

"लेकिन अँगरेज बहादुर कहाँ मानता है सतियागरह-फतियागरह?"

"टरेन का (डराइबर) दू-चार जन

को देखेगा तो नहीं रोकेगा, लेकिन समसे गाँव पर न चला देगा टरेनियाँ।"

"और चलाइए दिया तो का कर लेंगे हम? हम तो बकरी ठहरे, मेमिया के मर जाएँगे और आप लोग बाघ हैं तड़प के यह जा, वह जा।" तीसरी शंका।

"अँगरेज बहादुर का राज है, बाघ-बकरी एक्के घाट पर पानी पीता है।"

सो साहब, जब तीसरी शंका का भी समाधान हो गया तो बाघ-बकरी एक ही घाट पर इकट्ठे हुए। घाट माने रेलवई लाइन। पूरी पटरी भर गई गाँव वालों से।

टरेन आधी रात को आती थी। बहुत दूर से तारे की तरह दिखाई पड़ती थी हेडलाइट जो क्रमशः बड़ी होती जाती। लोग बार-बार उधर आँखें गड़ाते मगर घुप्प अँधेरे में तारा तो क्या, जुगनू तक नहीं झपकता नज़र आ रहा था। चारों ओर घुप्प अँधेरा था। इस वारदात में घायल हुआ लंगड़ा गजाधर जो पिछले साल ही बुढ़ा कर मरा, बार-बार पटरी पर कान लगाकर अनकता और 'एलौन्स' करता, "अभी नहीं आ रही है।"

"केतना दूर है?"

"धत्त तेरे की। उसको सुनने तो दो।" कइयो ने पूछने वालों को डांटा। आधे घण्टे की कोशिश के बाद गजाधर को सुनाई पड़ी थी टरेन के आने की आहट, "आ रही है। तैयार हो जाइए।"

"तैयार हो जाइए।" एक चेतावनी कई चेतावनियों में बदल गई।

लुक्के जले। मशालें जलीं। पगड़ियाँ बाँधी गईं। धोतियाँ खुंटियाई गईं। कछन्ने काछे गए। दूसरी ओर कई औरतों का साहस जवाब दे गया। कई तो भुलुक-भुलुक रोने भी लगीं। कुछ बुक्के फाड़ कर।

सिराजुल हक हरजिन्दर बाबा से कहा कि वे जनी-बच्चों को लाइन से हटा कर परे कर दें। उधर हेडलाइट की लूकी दिखी। छक-छक की आवाज़ क्रमशः तेज़ होती गई। माहौल उत्तेजना से भर गया, "बोलो-बोलो बजरंग बली की जै! जै! काली माई की जै! जै! या अली! या अली! जीसू बाबा की जै!

जै!" सबने अपने-अपने देवताओं की जैकार की। फिर धीरे-धीरे देवता सामूहिक हो गए।

इंजन सीटी पर सीटी दिए जा रहा था, "पीं-ई-ई-ई। हट जाओ। पीं-पीं-ई-ई-ई, अभी भी कहते हैं, हट जाओ।"

इधर से ललकार आई, "कोई नहीं हटेगा। सब को माय-बहिन की किरिया।"

टरेन करीब, और करीब आती गई। कलेजा जैस उछल कर पटरी पर आ गिरेगा। अरे बाप! ई तो बढ़ती ही आ रही है। रुकेगी नहीं न क्या! अरे भाग रे जोखना, भाग शमसुलवा, भाग फिलिपवा... भागी कि नहीं एक कलौतिया-आ-आ? धड़कच-धड़कच! सारी आवाज़ों को पीसता धड़धड़ाता चला गया इंजन। जो अन्तिम क्षण तक भाग पाए, भाग गए। जो न भाग पाए या अड़े रहे, पिसा गए। अँधेरे की चादर में लुक्कों-मशालों से छेद-छेद करके रोती-बिलखती आवाज़ें अपने-अपने प्रियजनों को सुबह तक टटोलती रहीं। एक दूजे में गुँथी गड्डमड्ड लाशें कई फर्लांग दूर तक चली गईं।

हाकिम आए। पलटन आई। "कौन-कौन था? कितने मरे? कितने लापता हैं? तीन!"

"झूठ! तीस को तीन बता रहा है। सत्ताइस की तो लाश ही न मिली।"

खैर! तीन हो या तीस, शहादत रंग लाई। बिनौला हॉल्ट स्टेशन बन गया। रुकने लगी टरेन। आज छोटी टरेन रुक रही है तो कल डाकगाड़ी भी रुकेगी। टेसन पर बड़ी-सी पट्टिका लग गई - 'तीन आदमियों ने अमुक तारीख को बिनौला में रेलगाड़ी रुकवाने के लिए प्राणोत्सर्ग किया।'

वक्त बीता। अँगरेज़ बहादुर गए। अपने देशी बहादुर आए तो पट्टिका की संख्या तीन से बढ़ाकर तीस कर दी गई। तीसों के नाम, उम्र, जाति, गाँव के नाम भी दर्ज हुए। पट्टिका के नाम दर्ज़ होते ही कई नामों पर आपत्तियाँ उठने लगीं – बुधचक के परमेशवर का नाम नहीं है, शिवपुर के दुलारे का नाम भी छूट गया है। इस्माइलपुर के अरमान और इलियास का नाम गायब है। सैमुअलगंज के एक भी आदमी का नाम नहीं है। लछमिनिया पाल्टी का अलग रोना था कि सूची में एक भी जनाना का नाम नहीं है, "का एक्की जनाना नहीं मरी होगी?" नामों का विचार करने के लिए अर्ज़ियाँ दी गईं। कमीटियाँ बैठीं।

इधर बिनौला के 'कबी' सुराजी जी ने शहीदों की प्रशस्ति में एक गीत लिखा जो ऐन आज़ादी के मौके पर गाया जाने लगा-

पूजूँ कि पूजूँ तोहें एहो बलिदानी बाबा,
देस के कारन मूड़ कटउल-अ हो...

बाद में 'बाबा' की जगह 'भैया', 'बाबू', 'काका', 'मैया', 'बहिनी' और 'बलिदानी' की जगह बाकायदा नाम पेश किए जाने लगे। धीरे-धीरे यह

गीत मंच से फैलकर जन-जन तक पहुँच गया, गाथा में ढल गया, यहाँ तक कि विवाह-पूर्व पितरों के स्मरण के लिए गाया जाने वाला 'सांझा पराती' (सिलमोहना) गीत बन गया और बिनौला ही नहीं पूरे जवार भर में गाया जाने लगा।

वर्ष बीते। 'जानकीदह' और 'हाथी पेटा' में पुरानी ज़मीन गंगाजी के पेट में गई, गंगाजी के पेट से नई ज़मीन निकली जिस पर कब्ज़ा जमाने की धूम मच गई। जाति-जाति, गाँव-गाँव का झगड़ा रगड़ा, लाठी, गुलेल और बन्दूकें। इतिहास दरका। दरके इतिहास की दरारों से नया इतिहास झाँकने लगा।

"अरे रघु बाबू का नाम शहीदों की लिस्ट में कैसे आ गया है? ऊ तो टरेनियाँ के आते ही भाग चले थे।"

"बरमेसर भैया का नाम भी लिस्ट में है, ऊ तो पहले ही 'जानकी दह' में डूब कर मरे थे।"

"दे मरदे! बताते हैं, का तो, उनका मूड़ी मिला था।"

"ऊ तो कौलेशरा का था।"

"और चनरिका...? ऊ तो पटना में दाढ़ी बढ़ा के मन्दिर में बैठे हैं।"

"ऐसा?"

"तब का? फुलेसरा ने अपनी आँखों देखा है।"

"अच्छा अमीरुल्ला के बारे में कोई बता रहा था, कहाँ तो हाँ बम्बई में है।"

मुँह पर हाथ रख कर 'फु-फु-फु-फु' हँसते हैं लोग। बहुत घपला है भाई, इतिहास में बहुत घपला है।

चश्मा चढ़ाकर एक-एक की जन्म पत्री खोली और बाँची जाने लगी तो तीस के तीसों शहीदों के नाम सन्दिग्ध हो उठे। और लोग तो घायल कुत्तों-सा 'गुर्र-गुर्र' करने तक ही सीमित रहे लेकिन भूमिहारों और यादवों में पूरी तरह ठन गई। अगर जमकर मार-पीट हो गई होती तो शहीदों की सूची

में परिशिष्ट जोड़ना पड़ता। शुकर था, ऐसा नहीं हुआ।

पट्टिका में रातों रात संशोधन हुआ। 'तीस शहीदों' की जगह किसी ने 'तीस भूमिहारों' लिख दिया था (यह गाँवों में साक्षरता का पहला प्रमाण था)। अगले दिन 'तीस भूमिहारों' की जगह 'तीस यादवों' ने ले ली। पहले ही सूची में नामों के साथ जातिगत उपाधियाँ दर्ज थीं। अब आई उनकी बारी। सम बिरिछ के साथ कभी राय, कभी यादव, कभी पाठक, कभी तिवारी, कभी चौधरी जुड़ता तो कभी कुछ और। शोधन-बन्धन की इस रस्साकशी में 'सच' की लाश को अपनी-अपनी ओर खींचा जाने लगा। वैसे भी बिनौला के इस संग्राम में लाशें एक साथ मिलकर इस तरह लोंढा बन गई थीं कि शिनाख्त नहीं हो पाई थी। सबके खून एक-दूसरे में मिलकर अपनी पृथक पहचान खो चुके थे। अगर कोई शिनाख्त या पहचान थी भी तो जानने वाले प्रायः मर-खप चुके थे और स्मृति की जगह अनुमान ने ले ली थी। आए दिन नए-नए मिथक बनाए और बिगाड़े जाते, पगड़ियाँ उछाली-लोकी और लगाई जातीं। अपनी-अपनी जाति के नायक तलाशने, श्रेय हथियाने में आखिर एक दिन वह शहीद पट्टिका ही शहीद हो गई। किसी दिलजले ने सारे शहीदों के नाम एक साथ गंगाजी में विसर्जित कर दिए थे। तख्ती को यूँ तो पानी में डूब जाना चाहिए था, मगर आर्कमिडीज़ के सिद्धान्त का विनम्र अनुपालन करते हुए वह डूबी नहीं, तैरती रही पानी पर, कारण उसके द्वारा हटाए गए पानी का वज़न ज़्यादा था और तख्ती हल्की...। पता चला तो कुछ लोगों को इतिहास के उद्धार का नेक ख्याल आया, पर वे कुछ न कर सके, कारण उस पर एक साँप ने आसन जमा लिया था और फन फुलाकर हर कोशिश का जवाब अपनी फुफकार से देता। कौवे काँव-काँव करते हुए उस पर

झपटते रहे, मगर उसका कुछ बिगाड़ न पाए। इस तरह लिखित की जगह अब मौखिक इतिहास रह गया। कोई टोंकता तो उसे फटकार मिलती, "चुप! यह हमारी आस्था का मामला है।"

खीझकर एक दिन शत्रुघ्न राय ने कहा कि उनकी जाति के तीस बेवकूफ कट मरे थे। उनकी मुद्रा से पता नहीं चला कि ये गाली दे रहे हैं या प्रशंसा कर रहे हैं। इस पर बूटन यादव ने उनकी बात काटी, "का झूठ बोलते हैं बामन होकर! नाम बताइएगा? अरे जो मरे वे बेवकूफ तो हमारी जाति के लोग थे।"

निचोड़ यह कि जो मरे वे 'शहीद' नहीं 'बेवकूफ' थे। माने कि तीस बेवकूफों ने अपनी जान दे दी बिनौला पर टरेन रुकवाने के लिए।

ट्रेनों के रुकने से अब लड़के-बच्चे दूर-दूर तक पढ़ने जाने लगे हैं। नौजवान दिल्ली, मुम्बई, बंगलौर, हैदराबाद और जाने कहाँ-कहाँ। आगे हाथी पेटा में भी हॉल्ट बन गया है, पीछे जानकी दह में भी। जहाँ नहीं बना, चेन-पुलिंग करके बना लिया गया है। माने घर के सामने रुकने लगी है टरेन। जो टिकट कटाए, ऊ बेवकूफ।

बिनौला शिक्षित हो गया है, समृद्ध भी। नतीजा यह कि 'सांझा पराती' के साझे पुरखों का 'कबी सुराजी जी' वाले गीत में से अपनी-अपनी जाति के लोगों को छाँटकर अलगा लिया गया है लेकिन शहीद हैं कि थेधर बने हर जगह अपनी नाक घुसेड़े रहते हैं। माने कि राम बिरिछ बामन भी है, राजपूत भी, दुसाध भी, गरीब मियाँ, गरीब खाँ, गरीबा राय, गरीबा यादव भी, हिन्दू भी, मुसलमान भी! यही हाल औरतों का है!

इतिहास की टरेन में इस धरम धक्के के बावजूद कुछ अभागे चढ़ने से रह जाते हैं और 'टरेन' चली जाती है। ऐसे लोग हद से हद कोस ही सकते हैं सो कुछ छूटे हुए लोग आज भी आपको बिनौला में कोसते हुए मिल जाएँगे। अरे खून तो हमारे पुरखों का भी बहा है, लेकिन देखिए ई अनियार और ज़ोर जबरदस्ती! अरे कीड़े पड़ेंगे कीड़े! हम कोई और उपाय देखेंगे।

इतिहास का यह फैसला, देखिए कब होता है।

संजीवः प्रसिद्ध समकालीन कथाकार। लोक जीवन की जिजीविषा-संघर्ष और लोककथा रस की पहचान करने वाले उपन्यास *सूत्रधार* के ख्यात लेखक। दलितों-वंचितों की आवाज़।

सभी चित्रः इशिता विस्वासः दिल्ली विश्वविद्यालय से समाजशास्त्र में स्नातकोत्तर। सृष्टि स्कूल ऑफ आर्ट, डिज़ाइन एंड टेक्नोलॉजी, बैंगलोर से आर्ट और डिज़ाइन में डिप्लोमा। स्वतंत्र चित्रकार एवं डिज़ाइनर हैं।

यह कहानी *प्रगतिशील वसुधा* पत्रिका के अंक-69 से ली गई है।

✦✦✦✦✦